श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

श्री शत्रुंजय-मुक्ति
सा विद्या या विमुक्तये
सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

द्वितीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान परिचय) अभ्यास ८

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : श्री शत्रुंजय मुक्ति वीरेन्दु रत्नत्रयी ट्रस्ट-हुबली

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

२. अजित-शांति स्तव (चालु)

नारायओ (नाराच) छंद

देवसुंदरीहिंपायवंदिआहिं वंदियाय;

जस्स ते सुविक्कमा कमा; अप्पणो निडालओहिं.

मंडणोडुणप्पगारओहिं केहिं केहिंवि अवंग;

तिलय पत्तलेह नामओहिं चिल्लओहिं संगयं.

गयाहिं, भत्तिसंनिटिट्ठ वंदणागयाहिं हुंति;

ते वंदिआ पुणो पुणो नारायओ.....२८

नंदिअयं (नंदितक) छंद

तमहं जिणचंदं, अजिअं जिअमोहं.
धुयसव्व किलेसं, पयओ पणमामि, नंदिअयं.....२९

-: शब्दार्थ :-

देवसुंदरीहिं - देवागंना् देवताओं की सुंदरीयां
पायवंदिआहिं - चरणों में नमन के लिए तत्पर
वंदिया - वंदना किये हुए
जस्स - जिनके
सुविक्कमा - अच्छे पराक्रम वाले
कमा - दो चरण
अप्पणो - स्वयं के
निडालअेहिं - ललाट से
मंडण - आभूषणों की
उड्डण - रचनाके
पगारअेहिं - प्रकारो की
केहिं केहिंवि - कैसे कैसे
अवंग - नेत्र के छोरों पर की गई अंजन की रचना
तिलय - तिलक
पत्तलेह - पत्रलेखा
नामअेहि - जिनके नाम हैं
चिल्लअेहिं - देदिप्यमान
संगयंगयाहिं - प्रमाणोपेत अंगवाली
भत्ति संनिविट्ठ - भक्ति से व्याप्त
वंदणा गयाहिं - वंदन करने के लिए आई हुई
हुंति - हैं
ते - तुम्हारे चरण
वंदिआ - वंदन किये गये
पुणो पुणो - पुनः पुनः, बारंबार
अहं - मैं
जिणचंदं - जिनचंद्र (जिनेश्वरो में चंद्र रुप)
अजिअं - अजितनाथ को
जिअमोहं - जिन्होनें मोह को जीता है
धुयसव्वकिलेसं - सभी क्लेशों का नाश करनेवाले
पयओ - तत्पर
पणमामि - प्रणाम करता हुं

गाथार्थ :- किरणों के समुह वाली देवांगनाओ ने प्रभु के पराक्रमी और अच्छी चाल वाले चरणों में स्वयं के ललाट से वंदना की है, वे प्रकार कैसे कैसे हैं ? नेत्र के प्रांत भाग में काजल, तिलक और पत्रलेखा जिनके नाम हैं, उन देदिप्यमान आभुषणों की रचना से शरीर के अवयव सुशोभित हैं, भक्ति पूर्ण वंदन के लिये आई हुई देवीओने तुम्हारे चरणों में बार बार वंदना की है.....२८

मोह को जीतने वाले, सर्व क्लेशों का नाश करने वाले, और सामान्य केवलीओ में चन्द्ररुप ऐसे श्री अजितनाथ भगवान को मैं तत्परता पूर्वक प्रणाम करता हूँ.....२९

भासुरयं (भासुरक) छंद

थुअवंदियस्सा रिसिगण देवगणेहिं,
तो देववहूहिं पयओ पणमिअस्सा;
जस्स जगुत्तम सासण यस्सा,

भत्तिवसागयपिंडि अयाहिं देववरच्छरसा बहुयाहिं,
सुरवररईगुण पंडियआहिं. भासुरयं.....३०

नारायओ (नारच) छंद

वंससद्दतंतितालमेलिअे,
तिउक्खरा भिरामसद्दमी सअे कअेअ;
सुइसमाणणे अ सुद्ध सज्ज गीअपाय
जाल घंटिआहिं;
वलय मेहला कलाव नेउराभिरामसद्द मीसअेकअेअ.
देवनट्टिआहिं हावभावविब्भमप्पगारअेहिं;
नच्चिऊण अंगहारअेहिं.
वंदिआय जस्स ते सुविक्कमा कमा.
तयं तिलोय सव्वसत्त संति कारयं ;
पसंतसव्वपाव दोसमेसहं नमामि
संतिमुत्तमं जिणं. नारायओ....३१

-: शब्दार्थ :-

थुअ - स्तुति किये हुए
वंदिअस्सा - वंदन किये हुए
रिसिगणदेवगणेहिं - ऋषि तथा देवता के गणों ने
तो - ततपश्चात
देववहूहिं - देवताओं की स्त्रीओ ने
पयओ - तत्पर होकर
पणमिअस्सा - प्रणाम किये गये
जस्स - मुक्ति देने योग्य
जगुत्तम - जगत में उत्तम
सासणयस्सा - जिनका शासन है
भतिवसागय - भक्ति के वशिभूत होकर आई हुई
पिंडिअयाहिं - एकत्रित हुई
देववर - विमानवासी देवों की श्रेष्ठ
अच्छरसा - अप्सराएं
बहुयाहिं - जिनमें बहुत हैं
सुद्ध - दोषरहित
सज्ज - षडज स्वर, प्रगुण
गीअ - गीत सहित
पायजाल - पैर की जाल के आकारवाली
घंटिआहिं - घुंघरु युक्त
वलय - कंकण
मेहला - कंदोरा, मेखला
कलाव - कलाप
नेउर- नुपुर
अभिराम - मनोहर
सद्दमिसअे - शब्दों से मिश्रित
कअेअ - करना
देवनट्टिआहिं - देवनर्तिका
विब्भम - विलास, विभ्रम
पगारअेहिं - प्रकारो से

सुरवररइ - देवों को उत्तम प्रकार की प्रीति उत्पन्न करने में
पंडियआहिं - पंडित, कुशल
वंससद्द - बांसुरी की ध्वनि
तंति - वीणा
ताल - चुटकी
मेलिअे - मिलाना
तिउक्खर - त्रिपुष्कर नाम का बाजा
अभिराम - मनोहर
सद्दमीसअे - शब्दों से मिश्रित
कअे - किए हुए
सुइसमाणणे - कान को समान करते
नच्चिउण - नृत्य करके
अंगहारअेहिं - अंगो के विक्षेप से
वंदिआ - वंदन किए गये
जस्स - जिनके
सुविक्कमा - अच्छी चाल वाले
कमा - चरण
तय - वे
तिलोय - त्रिलोक
सव्वसत्त - सर्व प्राणियों को
संतिकारयं - शांति करने वाले
पसंत - शांत हुए हैं
सव्वपावदोस - जिनके सर्व पाप ओर दोष
अेसहं - यह मैं
नमामि - नमन करता हूँ
संति - शांतिनाथ
उत्तमं जिणं - उत्तम जिन को

गाथार्थ : मुनिऔं के गणो ने और देवताओं के समुह द्वारा स्तुति वंदना किये गये, तत्पश्चात देवियों द्वारा प्रणाम किये गये जिनका उत्तम शासन जगत को मुक्ति दिलाने में शक्तिमान है । ऐसे तीर्थंकरों की भक्ति के वशिभूत होकर, देवों में उत्तम प्रकार की प्रीति उत्पन्न करने में कुशल ऐसी स्वर्ग की अप्सरायें भक्ति वशात एकत्रित होती है, उनमें से कितनीक बाँसुरी वगैरह शुषिर वाद्य बजाती हैं, कितनीक वीणा और चुटकी / ढोल वगैरह बजाती हैं, कितनीक त्रिपुष्कर नामक वाद्य से मनोहर ऐसे शब्दों से मिश्रित हुए कान को समान करने वाले शुद्ध षडज स्वर अथवा अधिक गुण युक्त, गायनयुक्त, पैरों में पहने हुए जालबंध घुंघरुओं की आवाज को कंकण, कटिमेखला, कलाप और नुपुर के मनोहर शब्दों में मिश्रित करके, हाव भाव से अभिप्राय दर्शाने वाले, विलास के प्रकार जिसमें रहे हुए हैं ऐसे अंग विक्षेप से नृत्य करती देवागनाओं ने नृत्य करके शांतिनाथ प्रभु के अच्छे पराक्रम वाले अथवा अच्छी चालवाले चरणों में वंदना की है, ऐसे तीन लोक के सर्व प्राणीओं को शांति देने वाले, और जिनके सभी पाप तथा दोष शांत हो गये हैं ऐसे उत्तम शांतिनाथ भगवान को में प्रणिधान पूर्वक नमस्कार करता हुँ .....३०-३१ ।

श्रीगणधरवाद

नववें गणधर श्री अचलभ्राता

आधारग्रंथ - श्रीकल्पसूत्र : अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्रीगुणसागरसूरि म.सा. तथा सचित्र गणधरवाद : प.पू. अरुणविजयजी म.सा.

बंगलादेश की कोसलानगरी के माननीय प्रसिद्ध विप्रश्रेष्ठ हारीतगोत्र के वसुदेव ब्राम्हण के पुत्र अचलभ्राता थे, उनकी माता नंदादेवी ने अचलभ्राता को मृगशीर्ष नक्षत्र में जन्म दिया था, पिता ने अच्छी तरह पढाई करायी थी । अपनी वंश परम्परा में चलते वेद,वेदान्त का अभ्यास करवा के पिता ने पुत्र को अध्यापक बनाया था ।

मांडे हुए गृहस्थाश्रम में अध्यापक का व्यवसाय करते अचलभ्राता के ३०० शिष्य थे, कर्मकांडी के रुप में भी कार्य करते यह विद्वान पंडित स्व पर शास्त्र में पारंगत हुए थे । अनेक देशों में शास्त्रार्थ सभाओ में आमंत्रण मिलने पर वे जाते थे ।

आपापापुरी में सोमिलविप्र द्वारा आरंभ किये गये यज्ञ, याग मे ये पंडितप्रवर भी ३०० शिष्यों सहित हाजरी देने गये थे । तीर्थंकर महावीर की सर्वज्ञ के रुप में कीर्ति सुन आपश्री भी अपने मन की शंका टालने हेतु खास समवसरण में गये । प्रभु ने कहा कि, **'' हे अचलभ्राता ! पुरुष अेवेदंगुं सर्वयद्भूतंयश्च भाव्यं''** इन वेदपदो से तू ऐसा समझता है कि यह सब पुरुष (आत्मा) ही है । इस आत्मा सिवाय का पुण्य, पाप वगैरह अलग कुछ भी नहीं है, यह तेरी समझ बराबर नहीं है, कारण की **'' पुण्यः पुण्येन कर्मणा, पापः पापेन कर्मणा ! ''** अर्थ - शुभ कर्मो के द्वारा जीव पुण्यशाली होता है और अशुभकर्मो के कारण जीव पापी होता है । इन वेदपदो से पुण्यपाप की सिद्धि होती है । प्रत्यक्ष तुझे ये देव नजर आ रहे है, वे तथा जगत में राजा, महाराजा, श्रेष्ठि वगैरह जो जो सुखी दिख रहे है, वो सब पूर्व में किये पुण्य से ही वैसे हुए है यह बात भी पुण्य के अस्तित्व को सिद्ध करती है, तथा जगत में बहुत सी आत्माये बहुत तरीके से दुःखी दिखती है, ये सब पूर्व में किये पाप से ही दुःखी हुए है । इससे यह बात पाप के अस्तित्व को सिद्ध करती है, इसलीये तुझे यह सब विचार करके पुण्य व पाप के अस्तित्व के बारे में शंका करना नहीं, प्रभु के ऐसे मीठे अमृत वचन से संशय दूर होने से प्रतिबोध पाये हुए अचलभ्राता अपने तीन सौ शिष्यो सहित विनीत भाव से प्रभु के चरणों में झुक पडे, प्रभु के पास दीक्षा लेकर प्रभु के शिष्य बने, फिर प्रभु के पास से त्रिपदी पाकर उन्होंने भी द्वादशांगी की रचना की ।

४६ वर्ष का गृहस्थाश्रम पूर्ण करके इस उम्र में उन्होंने उसी समवसरण में ३०० शिष्यो के साथ आर्हती दीक्षा अंगीकार कर जीवन प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिया, सच्चे त्यागी साधु बन गये । भगवान की पर्षदा में नौवे गणधर होने का मान उन्हें मिला । अचलभ्राता महात्मा ने लगभग २६ वर्ष तक चारित्र धर्म पाला और उसमें भी १२ वर्ष तक धद्मस्थ अवस्था में रह उम्र के ५८ वें वर्ष में क्षपक श्रेणी पर आरुढ हो चार घनघाती कर्म खपाकर सच्चे वीतराग एवं सर्वज्ञ सर्वदर्शी - केवलज्ञानी, केवलदर्शनी बने ।

१४ वर्ष तक केवली के रुप में विचरकर आपश्रीने अनेक भव्यातमाओ पर उपकार किया, चौथे आरे में जन्मे हुए तथा वज्रऋषभनाराच संघयण तथा समचतुरस्त्र नामक प्रथम संस्थान के शरीर वाले वे अपनी ७२ वर्ष की अंतिम उम्र में राजगृही पधारे । राजगृही में एक मास के निर्जल उपवास के साथ संलेषणा कर के पादपोपगमन अनशन पूर्वक, भवोपग्राही शेष चार अघाती कर्मो को क्षय कर भगवान महावीर से पहले उनकी उपस्थिति में ही निर्वाण पाये, मोक्ष में पहुंचे सदा के लिये निरंजन निराकार बने, उनकी शिष्य परम्परा नहीं चली, उन्होंने अपना परिवार सुधर्मास्वामी को सौप दिया था ।

किं तत्तं ?

गणधर भगवंत की दीक्षा.....
प्रभु के साथ वार्तालाप का प्रारंभ.....
किससे होता है ?

किं तत्तं ?

एक, दो और तीन बार तत्व की पृच्छा.....
बीज बुद्धि द्वारा त्रिपदी पाकर द्वादशांगी की रचना.....
बारह अंग.... उसमें बारहवें अंग में दृष्टिवाद अंग में चौदह पूर्व.....
न पुस्तक.... न स्लेट.... कैसी भव्य अद्‌भुत पद्धति.....
समस्त ज्ञान की प्राप्ति अरिहंत परमात्मा के मुखारविंद से.....
बहुत वर्षो तक पद्धति चालू रही.....
गुरु पढाये..... शिष्य पढे.....
साथ में प्रतिक्षण गुरु सानिध्य..... गुरु दर्शन..... पवित्र वातावरण.....
कैसा वो धन्य समय ! गुरु के द्वारा चैतन्य के महाहिमालय में से चैतन्य स्वरुप ज्ञान प्राप्ति.....
कैसी कमनसीबी हमारी की हमें अजीव ऐसे पुस्तको में से ज्ञान प्राप्त करने का ?

(लघु संग्रहणी) जैन भूगोल

आ. हरिभद्रसूरि म.

आभियोगिक देवोंकी श्रेणियाँ :-

आभियोगिक याने सेवक, दास, नोकर । ये आभियोगिक देव तिर्यग् जृंभक व्यंतर जाति के देव होते है ।

वैताढ्य पर्वत पर १० योजन चढते है तो विद्याधर मनुष्यों की श्रेणियाँ है । वहाँ से और १० योजन उपर जाने पर वहाँ पर दस योजन चौडाईवाली दोनो बाजु समतल भूमिवाली मेखालाएं आती है । उसके उपर इन देवों के भवन है ।

मेरु पर्वत के दक्षिण ओर की महाविदेह की १६ और भरतक्षेत्र की १ ऐसे १७ विजय के वैताढ्य पर्वत पर सौधर्मेन्द्र के लोकपाल के आभियोगिक देवों के रहने के स्थान है ।

मेरु पर्वत के उत्तर की ओर महाविदेह की १६ और ऐरावत क्षेत्र की १ इसतरह कुल १७ विजय के वैताढ्य पर्वत पर ईशानेन्द्र लोकपाल के आभियोगिक देवों के रहने के स्थान है ।

सोम, यम, वरुण और कुबेर ये चार जाति के लोकपाल देवों के साथ संबंधित ये देव है ।

इस तरह ६८ विद्याधर मनुष्यों की और ६८ आभियोगिक देवों की ऐसी कुल १३६ श्रेणियाँ है ।

विजय एवं द्रह

तीर्थ एवं श्रेणियों की रचना जानने के बाद अब हम विजय एवं द्रहों को जानने के लिये प्रयत्न करेंगे ।

चक्की जे अव्वाइं, विजयाई इत्थ हुंति चउतीसा ।
महद्दह छप्पउमाई, कुरुसु दसगंति सोलसगं ।।२० ।।

चक्रवर्ती को जीतने योग्य क्षेत्र को विजय कहते है, ऐसे विजय जंबुद्वीप में चौतीस है । पद्म आदि बडे छः द्रह और दो कुरुक्षेत्र में दस सरोवर इस तरह सोलह सरोवर है ।

चक्रवर्ती छः खंडो के विजेता होते है । ये छः खंडवाला क्षेत्र ही चक्रवर्ती को जितने योग्य होता है । ऐसे छः खंडवाले जंबुद्वीप में ३४ क्षेत्र है । इन चौतीस क्षेत्रों में एक भरतक्षेत्र, दुसरा ऐरावत क्षेत्र और महाविदेह क्षेत्र के ३२ विजय का समावेश होता है । अन्य हिमवंत हिरण्यवंत आदि क्षेत्र है परंतु वहाँ चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि की कोई व्यवस्था नहीं है । छः खंडवाले इस क्षेत्र पर चक्रवर्ती संपूर्ण विजय प्राप्त करता है । अतः वह विजय क्षेत्र के नाम से पहचाना जाता है । विजय क्षेत्र में रहे हुए छः खंड इस तरह है :-

१) दक्षिणार्ध मध्य खंड २) दक्षिणार्ध पश्चिम खंड ३) उत्तरार्ध पश्चिम खंड ४) उत्तरार्ध मध्य खंड ५) उत्तरार्ध पूर्व खंड ६) दक्षिणार्ध पूर्व खंड ।

महाविदेह क्षेत्र की ३२ विजयों में सोलह पूर्व महाविदेह की है और सोलह पश्चिम महाविदेह की है । ये बत्तीस विजय २२१२ $\frac{७}{८}$ योजन विस्तार वाले है । बत्तीस विजय के नाम निम्नलिखित है - पूर्व महाविदेह में आठ विजय उत्तर दिशा में हैं । आठ विजय दक्षिण दिशा में हैं । पश्चिम महाविदेह में भी आठ विजय उत्तर दिशा में है, आठ विजय दक्षिण दिशा में हैं ।

उत्तर में **पूर्वमहाविदेह** दक्षिणमें		दक्षिण में **पश्चिम महाविदेह** उत्तर में	
१. कच्छ	९. वत्स 卐	१७ पद्म	२५ वप्र 卐
२. सुकच्छ	१० सुवत्स	१८ सुपद्म	२६ सुवप्र
३. महाकच्छ	११ महावत्स	१९ महापद्म	२७ महावप्र
४. कच्छावती	१२ वत्सावती	२० पद्मावती	२८ वप्रावती
५. आवर्त	१३ रम्य	२१ शंख	२९ वभ्गु
६. मंगलावर्त	१४ रम्यक	२२ कुमूद	३० सुवभ्गु
७. पुष्कलावर्त	१५ रमणिक	२३ नलिन	३१ गंधिल
८. पुष्कलावती 卐	१६ मंगलावती	२४ नलिनावती 卐	३२ गंधिलावती

卐 इन चार विजय में वर्तमानकाल मे सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु तीर्थंकर अनुक्रम से विचरण कर रहे है ।

भरत और ऐरावत क्षेत्र ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन विस्तारवाला है । द्रह, ह्रद याने सरोवर, जंबूद्वीप के मुख्य सरोवर शाश्वत है और उसमें देव-देवियों का वास है ।

महाद्रहों के बारे में अब जानेंगे :-

छः महाद्रहों (सरोवर) की जानकारी निम्नानुसार :-

ह्रदका नाम	ह्रदका स्थान	लंबाई योजन	चौडाई योजन	गहराई योजन	किस देवी का निवासस्थान
१. पद्म ह्रद	क्षुल्ल हिमवंत पर	१०००	५००	१०	श्री देवी का
२. महापद्म ह्रद	महाहिमवंत पर	२०००	१०००	१०	ह्री देवी का
३. तिग्च्छि ह्रद	निषध पर	४०००	२०००	१०	धी देवी का
४. पुंडरिक ह्रद	शिखर पर	१०००	५००	१०	लक्ष्मी देवी का
५. महापुंडरिक ह्रद	रक्मि पर	२०००	१०००	१०	बुद्धि देवी का
६. केसरी ह्रद	नीलवंत पर	४०००	२०००	१०	कीर्ति देवी का

श्री ह्री आदि देवियाँ इन सरोवरों के मुख्य कमल में अपने परिवार सहित निवास करती है ।

दस लघु द्रह देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र में आये है । इन दस में से पांच द्रह सीतोदासे एवं पाँच द्रह सीता नदी से भेदकर दो दो हिस्सों मे बँट गये हैं । ये दसो द्रह १००० योजन लंबे, ५०० योजन चौडे और १० योजन गहराईवाले है, उसमें नामानुसार देव निवास करते है ।

देवकुरु के पाँच ह्रद (लघु)	उत्तर कुरुना पाँच ह्रद (लघु)
१) निषध	६) नीलवंत
२) देवकुरु	७) उत्तरकुरु
३) सुरप्रभ	८) चंद्र
४) सुलस	९) ऐरावत
५) विद्युत्प्रभ	१०) माल्यवंत

जंबूद्विप का मानचित्र

श्रावक - दिनकृत्य -- प्रतिक्रमण

शाम हुई - सूरज अस्ताचल को जाता है.....

पंखी अपने घोंसले में वापिस आते है.....

गायें चरकर जंगल में से वापिस लौटती है.....

पढने अथवा खेलने गये बालक घर की ओर आते है....

कामधंधे पर गये हुए लोग घर की ओर लौटते है.....

बस इसी तरह परमात्मा के शासन में सिर्फ बाहर से ही नहीं अंदर से भी वापिस घूम जानेकी अद्‌भूत आराधना साधक के लिये - साधु-साध्वीजी भगवंतो के एवं श्रावक श्राविकाओं के लिये बतायी है ।

सबेरे का भूला शाम को घर लौटे तो भूला नहीं कहलाता । त्रिलोक नाथ का शासन कहता है कि बसना तो स्व में ही है, परंतु मोह से, प्रमाद से अथवा अज्ञान से हम स्व में से पर में चले जाय तो हम हमारी मर्यादा चूक जाते है और अपनी मर्यादा से बाहर निकल जाते है वह अतिक्रमण कहलाता है । जब हमें अपनी मर्यादा का ख्याल आता है और हम वापिस लौटते है उस क्रिया को प्रतिक्रमण कहते है।

आज के पंचम काल में, कलियुग में हमें मोह, प्रमाद और अज्ञान के कारण मर्यादा चूकने का या स्व में से बहार निकल जाने का भान रहता नहीं इसलिये हम पर महा उपकार कर परमात्मा ने सबेरे, शाम प्रतिक्रमण की सुंदर व्यवस्था हमारे समक्ष रखी है ।

प्रतिक्रमण को आवश्यक कहा गया है, जिसे प्रभुशासन को प्राप्त साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं के लिये अवश्य करने के कर्तव्यरुप बताया है ।

स्वस्थानाद् यत् परस्थानं, प्रमादस्य वशाद् गतः ।

तत्रैव क्रमेशं भूयः, प्रतिक्रमणमुच्यते ।।

प्रमाद वश स्वस्थान से जो परस्थान में जाने का हुआ हो वहाँसे लौटकर स्वस्थान में वापिस आना प्रतिक्रमण कहलाता है ।

प्रतिक्रमण देवसिक आदि पांच भेदवाला है -

१) दिवस के अंत में जो किया जाता है, दिवस दरमियान यदि अशुभ योगों में प्रवृत्ति हुई हो उसके निवृत्तिरुप जो प्रतिक्रमण किया जाता है वह **देवसिक प्रतिक्रमण** कहलाता है ।

२) रात्री के अंत में जो किया जाता है - रात्रि दरमियान जो अशुभ योगों में प्रवृत्ति हुई हो वहाँ से वापिस लौटने की निवृत्तिरुप जो क्रिया करते है, वह **राई प्रतिक्रमण** कहलाता है ।

३) पक्ष के अंत में जो किया जाता है - पक्ष दरमियान यदि अशुभ योगों में प्रवृत्ति हुई हो उनसे वापिस लौटने की निवृत्तिरुप जो क्रिया की जाती है उसे **पक्खी प्रतिक्रमण (पाक्षिक प्रतिक्रमण)** कहते है ।

४) चार महिने के बाद जो किया जाता है - चार माह तक यदि अशुभ योगों में प्रवृत्ति हो गयी हो तो वहाँ से पुनश्च लौटने की जो निवृत्तिरुप क्रिया होती है उसे **चौमासी (चातुर्मासिक) प्रतिक्रमण** कहते है ।

५) वर्ष के अंत में जो किया जाता है - वर्ष दरमियान यदि अशुभ योगों में प्रवृत्ति हुई हो वहाँसे वापिस लौटने की निवृत्तिरुप क्रिया को **सांवत्सरिक प्रतिक्रमण** कहते है ।

प्रभु महावीर स्वामी ने वैशाख सुदी ग्यारस के शुभ दिन को श्री चतुर्विध संघ की स्थापना की । उस दिन से श्री संघ ने प्रतिक्रमण का पारंभ किया, श्री संघने प्रथम देवसिक प्रतिक्रमण किया अतः उसका क्रम प्रथम रखने में आया ।

देवसिक हो या राई प्रतिक्रमण हो प्रत्येक प्रतिक्रमण में छह आवश्यक का समावेश होता है । ये छह आवश्यक निम्नलिखित है -

१) सामायिक आवश्यक २) चउविसत्थो (चतुर्विंशति) आवश्यक ३) वंदन आवश्यक ४) अतिचार आवश्यक ५) कायोत्सर्ग आवश्यक ६) पच्चखाण आवश्यक ।

अपनी कोई भी भूल हुई हो, उससे वापिस हटना हो, तो प्रथम हमे शांत होना है, अपने कार्यों को याद कर भूलों का संशोधन करना पडता है, भूलों का देवगुरु साक्षी से स्वीकार करना पडता है, कोई भी कार्य करने के पहले देवगुरु को नमस्कार करना होता है । अपनी भूलों को स्वीकार कर उनको सदा के लिये जीवन से विदाय देनी पडती है । उसके लिये प्रायश्चित और पच्चक्खाण लेना पडता है ।

प्रतिक्रमण की क्रिया को ऑपरेशन के साथ तुलना की जा सकती है । ऑपरेशन बाद में होता है, पहले डॉक्टर शरीर में रहे हुए खराबी को खोज निकालते है । इसी तरह साधक अपने जीवन में रहे हुए दोषों को खोज निकालता है । विविध प्रकार के निष्णातों के उपस्थिति में खराब भाग को या तो रिपेर करने में आता है अथवा काटकर निकाल दिया जाता है ।

साधक देवगुरु की उपस्थिति में (साक्षी से) भूलों का दोषों का स्वीकार कर उन्हें जीवन में से निकाल डालता है । निकाल डालने के लिये क्षमा की साधना के साथ पुरुषार्थ करता है । पश्चात कायोत्सर्ग और पच्चक्खाण द्वारा उसकी विशेष शुद्धि होती है । उसी के लिये छः आवश्यक बताये है ।

अब हम इन छः आवश्यकों को क्रमानुसार समझने की कोशिश करते हैं -

१) सामायिक आवश्यक :- पाणी स्थीर हो तो उसमें किसी भी वस्तु का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, उसी तरह हमारे मन में समाधि होती है तभी अपनी स्वयं का जीवन कैसा है ? इसका सच्चा प्रतिबिंम्ब दिखाई देता है, अपनी भूलों का संशोधन करना हो, भूलों से पीछे हटना हो तो समता,समाधियुक्त सामायिक अत्यंत आवश्यक है । यह तो प्रतिक्रमण का प्रवेशद्वार है अतः प्रतिक्रमण करने के लिये प्रथम सामायिक का स्वीकार अनिवार्य बनता है ।

२) चउविसत्थो आवश्यक :- कोई भी शुभ कार्य करना हो तो देव-गुरु को वंदन कर उनके आशीर्वाद लेना चाहिये । यहाँ पर अपनी भूलों को खोजकर उसमें से वापिस पीछे हटने की विशिष्ट कोटि की प्रतिक्रमण की क्रिया करने के लिये अरिहंत परमात्मा की स्तवना करनी चाहिये, चौबीस तीर्थंकरो की स्तुति, नमस्कार कर कार्य को सफल बनाना है । इस आवश्यक में लोगस्स द्वारा आराधक चौबीस तीर्थंकरो की भक्ति का लाभ लेता है ।

३) वांदणा आवश्यक (वंदन आवश्यक) :- अपने जीवन के दोष एवं गलतियों को, अतिचारों को जब गुरु साक्षी से स्वीकार कर उसके लिये ''मिच्छामि दुक्कडम् '' करना है तब प्रथम जीवन के अहंकार का त्याग कर विनय और नम्रता दर्शाने के लिये गुरु-वंदन के लिये यह तीसरा आवश्यक है ।

४) अतिचार / प्रतिक्रमण आवश्यक :- छह आवश्यकों में यह अति महत्व का आवश्यक है । इस आवश्यक के दरमियान साधक अपने जीवन के व्रत एवं नियमों में लगे हुए अतिचार और गलतियों को खोजता है, याद करता है और गुरु साक्षी से मन,वचन, काया से क्षमा याचना करता है । आत्म जागृति और आत्म-निर्मलता के लिये यह विशिष्ट क्रिया आराधना है । इस आवश्यक का मुख्य हेतु विश्वमैत्री और शुभभावना है ।

५) कायोत्सर्ग (काउसग्ग आवश्यक) :- अंधःकार से प्रकाश की ओर और अपूर्णता से पूर्णता की ओर ले जानेवाले ध्यान के अभ्यास की यह क्रिया है । शरीर की ममता का त्याग कर आत्म-स्वरुप में रमणता करना है । इससे मन की एकाग्रता साधी जाती है और अपने सच्चे स्वरुप को देखने और विचार करने का मौका मिलता है ।

६) प्रत्याख्यान/ पच्चक्खाण आवश्यक :- इस आवश्यक में इच्छाओं का निरोध करने के लिये भोगसामग्री की मर्यादा करने के लिये धार्मिक नियम लिये जाते है । इससे संतोष आता है । मन शांत बनता है और इंद्रियों की माँगे घट जाती है । सामान्यतः सबेरे के (राई) प्रतिक्रमण में नवकारसी का और शाम को (देवसिक) प्रतिक्रमण में चौविहार का पच्चक्खाण लिया जाता है ।

जाने अनजाने जीवन में हो गये हुए पापों का शुद्ध भाव से यदि प्रतिक्रमण करने में आये तो जीवन में से पापों का क्षय होता है, नाश होता है । जीवन शुद्ध और सात्विक बनता है, दुर्गति का भय दूर होता है । आत्मा सद्गति की ओर प्रयाण करता है । जीवन में अवश्य करने योग्य यह श्रावक का कर्तव्य है । प्रतिक्रमण के महत्व को समझने वाले श्रावक ''माहणसिंह'' की तरह किसी भी परिस्थिति में ''प्रतिक्रमण'' का कर्तव्य चूकता नहीं ।

माहणसिंह दिल्लीके फिरोजशाह बादशाह के मंत्रीश्वर थे, प्रतिक्रमण के मूल्य को जाननेवाले प्रतिक्रमण के अद्भूत आराधक थे । युध्दभूमि पर खूनखार जंग चलता हो ऐसे समय में भी प्रतिक्रमण नहीं चूकते थे । समय हुआ कि प्रतिक्रमण करते थे । उस समय राजाज्ञा से उनके चारों ओर सैन्य तैनात किया जाता था जो उनकी रक्षा करता था ।

राजा ने एक बार बिना गुनाह के मंत्रीश्वर माहणसिंह को जेल में बंद कर दिया, उनके दोनो पैरो में बेडियाँ डाल दी गई । शाम हुई, प्रतिक्रमण का समय हुआ, दोनो हाथपैरों मे बेडियाँ पडी थी, प्रतिक्रमण कैसे करें, मंत्रीश्वर की आँखो में आंसू आ गये । जेलर ने प्रतिक्रमण के समय के लिये बेडियाँ निकाल डाली । यह क्रम कई

दिनों तक चलता रहा ।

कुछ समय बितने पर राजा को अपनी भूल समझी । राजा ने माहणसिंह को जेल से मुक्त किया । घर आकर माहणसिंह ने तत्काल जेलर को बुलाया, उसके सहायता से जितने प्रतिक्रमण हुए थे उतनी सोनामोहरें उसे भेंट की ।

बिना काम के अर्थहीन बातों में और कामों में समय गुमानेवाले हमें कब समझेगा प्रतिक्रमण का मूल्य ?

पाँच प्रतिक्रमण किस लिये ?

प्रतिक्रमण का सीधा संबंध अपने कषाय, क्रोध, मान, माया, लोभ के साथ है । इन कषायों के चार-चार प्रकार है, १) अनतानुबंधीन २) अप्रत्याख्यानावरणीय ३) प्रत्याख्यानावरणीय ४) संज्वलन

कोई भी कषाय यदि यावत जीवन तक रह जाय तो वह अनंतानुबंधीन होता है । अनंतानुबंधीन कषाय सम्यग्दर्शन को जीवन में प्रगट नहीं होने देता, इससे अपना नंबर श्रावक की कक्षा में से भी निकल जाता है । यदि अपने किसी भी कषाय को अनंतानुबंधी होने न देना हो तो भाव पूर्वक ''संवत्सरी प्रतिक्रमण'' अवश्य करना चाहिये और सब जीवों को खमाना चाहिये ।

इसी तरह कोई भी कषाय एक साल तक टिक जाय, रह जाय तो वह अप्रत्याख्यानावरणीय बनता है, और वह जीवन में किसी भी प्रकार के पच्चक्खाण को, देशविरति को आने नहीं देता । अतः अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय को दूर करने के लिये ''चातुर्मासिक प्रतिक्रमण'' अवश्य करना चाहिये ।

यदि कोई भी कषाय चार माह तक रह जाय तो वह कषाय प्रत्याख्याणावरणीय बनता है और वह सर्वविरति का घात करता है । यदि जीवन में सर्वविरति टिकानी हो तो पाक्षिक / पक्खी प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिये ।

यदि कोई भी कषाय पंद्रह दिन तक रह जाता है तो, वह कषाय संज्वलन कषाय बनता है । वह यथाख्यात चारित्र का घात करता है । इस कषाय को दूर करने के लिये, सतत जागृत रहने के लिये शास्त्रकार महर्षियों ने देवसिक एवं राई प्रतिक्रमण कहा है ।

भव - भव में हमने आक्रमण और प्रतिक्रमण बहुत किये, आओ अब समझकर वापिस लौटे, प्रतिक्रमण कर आत्मा में स्व में बसें, मिला हुआ मानवभव सार्थक करें ।

कर्म - विज्ञान

(आधार ग्रंथ - कर्म - विपाक (प्रथम कर्मग्रंथ) - आ. देवेन्द्रसूरि म.)

नाम - कर्म (चालू)

संघयण नाम कर्म

संघयणमट्ठि - निचओ तं छद्धा - वज्ज - रिसह - नारायं ।
तह रिसह नारायं, नारायं अद्ध नारायं ।।३८।।
कीलिअ छेवट्ठं इह, रिसहो पट्टो अ कीलिआ वज्जं ।
उभओ मक्कड - बंधो, नारायं, इम मुरालंगे ।।३९।।

गाथार्थ - अस्थि रचना की मजबूती और शिथिलता को संघयण कहते है संघयण छह प्रकार के हैं - १. वज्रऋषभनाराच संघयण २) ऋषभनाराच संघयण ३) नाराच संघयण ४) अर्द्धनाराच संघयण ५) किलिका संघयण ६) सेवार्त संघयण ।।३८।।

ऋषभ का अर्थ है - पाटा । वज्र का अर्थ है - किलिका । दोनों तरफ के मर्कट बंध को नाराच कहते हैं । ये छह संघयण औदारिक शरीर में ही होते हैं ।।३९।।

शरीर की अस्थियों की रचना और अस्थि की मजबूती वह संघयण है, इस संघयण के छह भेद हैं -

१) वज्रऋषभ नाराच संघयण - जिस संघयण में मर्कट बंध की भांति दो अस्थियां परस्पर आवेष्टित हो और उसके उपर पाटे के रुप में एक अस्थि हो । इन तीनों अस्थियों को भेद कर मजबूत बनाने वाली कील रुप अस्थि हो, उसे वज्र ऋषभनाराच संघयण कहते हैं । ऐसी अस्थि रचना दिलाने वाला कर्म वह **वज्रऋषभनाराच संघयण** नाम कर्म है । यह संघयण मनुष्यों तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंचो में ही पाया जाता है ।

२) ऋषभनाराच संघयण - जिस संघयण में वज्रऋषभनाराच के समान समस्त व्यवस्था हो परंतु कील (वज्र) न हो अर्थात मर्कट बंध की भांति दो अस्थियाँ परस्पर आवेष्टित हो, उसके उपर पाटे के रुप में अस्थि हो परंतु उन्हें भेद कर मजबूत बनाने वाली कील के समान अस्थि न हो उसे **ऋषभनाराच संघयण** कहते हैं । जिस कर्म के उदय से ऐसा संघयण मिलता है, उसे **ऋषभ नाराच संघयण नाम कर्म** कहते हैं ।

३) नाराच संघयण नाम कर्म - जिस संघयण में मर्कट बंध की भाँति दो अस्थियाँ परस्पर आवेष्टित हो परंतु उसके उपर पाटे की भांति अस्थि न हो और कील भी न हो उसे **नाराच संघयण** कहते हैं । जिस कर्म के उदय से ऐसा संघयण मिलता है उसे **नाराच संघयण नाम कर्म** कहते हैं ।

४) अर्धनाराच संघयण नाम कर्म - जिस संघयण में दो अस्थियों में एक तरफ ही मर्कट बंध हो दूसरी तरफ न हो उसे **अर्धनाराच संघयण** कहते हैं । जिस कर्म के उदय से ऐसा संघयण मिलता है, उसे **अर्धनाराच संघयण नाम कर्म** कहते हैं ।

संघयण

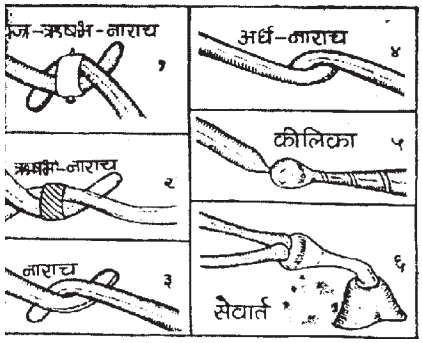

५) कीलिका संघयण - जिस संघयण में दो अस्थियाँ परस्पर मर्कट बंध की भांति आवेष्टित न हो, पर उसकी उसके उपर कील रुप अस्थि हो उसे **कीलिका संघयण** कहते हैं ।

जिस कर्म के उदय से ऐसा संघयण प्राप्त होता है, उसे **कीलिका संघयण नाम कर्म** कहते हैं ।

६) छेवटठुं संघयण (सेवार्त संघयण) - जिस संघयणं में दो अस्थियां आपस में मात्र स्पर्श की हुई हो, परस्पर मर्कट बंध न हो, कील और पाटा भी न हो उसे **सेवार्त (छेवट्ठुं) संघयण** कहते हैं । जिस कर्म के उदय से ऐसा संघयण प्राप्त होता है उसे **सेवार्त संघयण नाम कर्म** कहते हैं ।

यह संघयण तिर्यंच और मनुष्य को, औदारिक शरीर को ही होता है । देवताओं और नारकीओ को संघयण नहीं होता । वैक्रिय और आहारक शरीर को संघयण नहीं होता ।

गर्भज तिर्यंच और मनुष्य को छह संघयण होते हैं । विकलेन्द्रिय को छेवट्ठुं (सेवार्त) संघयण ही होता है । पंचम आरे के, वर्तमान काल के मनुष्यों का भी छेवट्ठा (सेवार्त) संघयण ही होता है । अस्थियाँ ही न होने के कारण अेकेन्द्रिय असंघयणी होते हैं ।

संस्थान नामकर्म एवं वर्ण नाम कर्म

सम-चउरंस निग्गोह-साइ -खुज्जाइ वामणं हुंडं ।
संठाणा वण्णा किण्ह नील - लोहिअ-हलिद्द-सिआ ।।४०।।

गाथार्थ :- संस्थान नाम कर्म छह प्रकार का कहा गया है - १) समचतुरस्त्र २) न्यग्रोध परिमंडल ३) सादि ४) वामन ५) कुब्ज ६) हुंडक ।।४०।।

वर्ण नाम के पाँच प्रकार हैं - १) काला २) नीला ३) लाल ४) पीला ५) श्वेत ।।४०।।

शरीर की आकृति आकार को संस्थान कहते हैं । उसके छह प्रकार है -

१) समचतुरस्त्र संस्थान - सम याने समान हो, चतुर याने चारों, अस्त्र याने कोने - किनारे । इस प्रकार चारों समान किनारे वाली शारीरिक संरचना को समचतुरस्त्र संस्थान कहते हैं ।

पर्यंक (पालथी) आसन में बैठे हुए व्यक्ति के दोनों घुटनों के मध्य का अन्तर, दाये स्कंध से बायें घुटने का अन्तर, बायें स्कंध से दायें घुटने का अन्तर तथा ललाट और आसन के मध्य का अन्तर ये सारे अन्तर जिस संस्थान में समान रुप से हो उसे **समचतुरस्त्र संस्थान** कहते हैं । ऐसी शारीरिक आकृति प्रदान करने वाले कर्म को **समचतुरस्त्र संस्थान नाम कर्म** कहते हैं ।

यह शरीर सर्वांग सुंदर, प्रमाणयुक्त अवयव वाला, लक्षण युक्त होता है ।

२) न्यग्रोध परिमंडल संस्थान - न्यग्रोध का अर्थ होता है वट-वृक्ष जो उपर के भाग में सुंदर और नीचे के भाग में असुंदर प्रतीत होता है । उसी तरह नाभि से उपर के अवयव सुदर और संपूर्ण हो जबकि नाभि से नीचे के अवयव हीनाधिक होते है । ऐसी शरीराकृति न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहलाती है । जबकि ऐसी शरीराकृति प्रदान करने वाला कर्म **न्यग्रोध परिमंडल संस्थान नाम कर्म** कहलाता है ।

३) सादि संस्थान - जिस शरीर के नाभि के उपर के अवयव हीनाधिक हो और नाभि के नीचे के अवयव सप्रमाण संपूर्ण हो ऐसी शरीर कृति सादि संस्थान कहलाती है । ऐसी शरीराकृति प्रदान करने वाला कर्म **सादि संस्थान नाम कर्म** है ।

४) कुब्ज संस्थान - जिस शरीर के मस्तक, ग्रीवा, हाथ ओर पैर ये चार अंग सप्रमाण, सुलक्षण हो परंतु हृदय, उदर (पेट) अप्रमाण लक्षणहीन हो ऐसी शरीराकृति वामन संस्थान कहलाती है । ऐसी शरीरकृति को प्रदान करने वाला **कर्म कुब्ज संस्थान** नाम कर्म कहलाता है ।

५) वामन संस्थान - हृदय और उदर सुलक्षण, सप्रमाण हो परंतु मस्तक, ग्रीवा, हाथ-पाँव लक्षणहीन अप्रमाण हो वह शरीराकृति **वामन संस्थान** कहलाती है । ऐसी शरीराकृति प्रदान करने वाले कर्म को **वामन संस्थान नामकर्म** कहते हैं ।

६) हुंडक संस्थान - शरीर के सभी अवयव हिनाधिक और कुलक्षण हो ऐसी शरीराकृति **हुंडक संस्थान** कहलाती हैं । ऐसी आकृति प्रदान करने वाला कर्म **हुंडक संस्थान नाम कर्म** कहलाता है ।

वर्णनाम कर्म

शरीर की चमडी तथा विविध पदार्थ अथवा अवयवो को अलग अलग रंग प्रदान करने का काम वर्ण नाम कर्म करता है । वर्ण नाम कर्म के मुख्य पाँच भेद हैं -

१) कृष्ण वर्ण नाम कर्म - कृष्ण याने काला /श्याम, वर्ण याने रंग । जिस कर्म के उदय से जीव को कृष्ण (श्याम) शरीर मिलता है, उसे **कृष्ण वर्ण नाम कर्म** कहते हैं । जैसे - कौवा, कसोटी का पत्थर, कोयल ।

२) नील वर्ण नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव को नीला शरीर मिलता है, उसे **नील वर्ण नाम कर्म** कहते हैं । जैसे - मरकत मणी, पोपट, नीलकमल ।

३) लोहित / रक्त (लाल) वर्ण नाम कर्म - जिसकर्म के उदय से जीव को शरीर का रक्त (लाल) वर्ण मिलता है, वह **रक्त वर्ण नाम कर्म** कहलाता है । जिसे - हिंगडोक, सफरचंद, लाल पुष्प ।

४) पीत वर्ण नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव को शरीर का पीला वर्ण मिलता है, वह **पीतवर्ण नाम कर्म** है । जैस - हलदी ।

५) श्वेत वर्ण नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव को शरीर का श्वेत वर्ण मिलता है वह **श्वेत वर्ण नाम कर्म** कहलाता है । जैसे - शंख, खरगोश ।

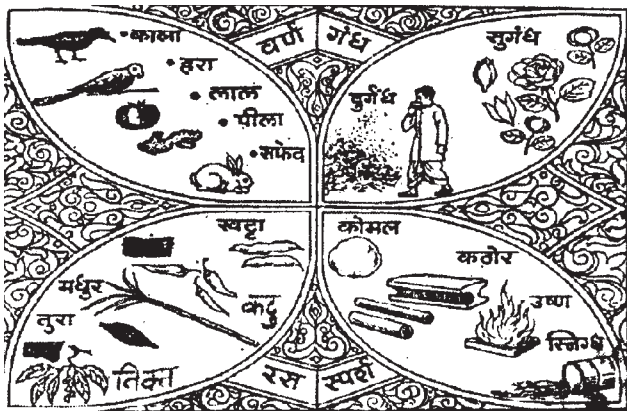

गंध - रस-स्पर्श नाम कर्म

सुरहिदुरही रसा पण, तित्त-कडु-कसाय-अंबिला-महुरा ।।
फासा-गुरु-लहु-मिउ-खर-सी उण्ह-सिणिद्ध-रुक्खट्ठा ।।४१।।

गाथार्थ - गंधनाम कर्म दो प्रकार का है १) सुरभि २) दुरभि

रस नाम कर्म पाँच प्रकार का है - १) तिक्त २) कटु ३) कषाय ४) खट्टा ५) खारा ६) मधुर

स्पर्श नाम कर्म आठ प्रकार का है - १) गुरु २) लघु ३) मृदु ४) कर्कश ५) शीत ६) उष्ण ७) स्निग्ध ८) रुक्ष ।।४१।।

शरीर में दो प्रकार की गंध होती है । ऐसी गंध की प्राप्ति कराने वाला गंध नाम कर्म होता है ।

१) सुरभि नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से शरीर में विविध प्रकार की सुगंध प्राप्त होती है वह **सुरभि नाम कर्म** है। जैसे - गुलाब, चंदन, कस्तुरी ।

२) दुरभि नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से शरीर में विविध प्रकार की दुर्गंध प्राप्त होती है, वह **दुरभि नाम कर्म** है । जैसे लहसुन ।

प्राणीओं के शरीर में पाँच प्रकार के रस होते हैं । यह रस प्रदान कराने वाला कर्म वह रस नाम कर्म हैं ।

१) तिक्त रस नाम कर्म - तिक्त याने कडवा । जिस कर्म के उदय से जीव को तिक्त रस की प्राप्ति होती है, उसे **तिक्त रस नाम कर्म** कहते हैं । जैसे - नीम, करेला

२) कटुरस नाम कर्म - कटु याने तीखा । जिस कर्म के उदय से जीव को कटु रस की प्राप्ति होती है वह **कटुरस नाम कर्म** है । जैसे - मिरची, काली मिर्च

३) कषाय रस नाम कर्म - कषाय याने तुरट । जिस कर्म के उदय से जीव को कषाय रस की प्राप्ति होती है वह **कषाय रस नाम कर्म** है । जैसे - हरडे, आँवला

४) आम्ल रस नाम कर्म -आम्ल याने खट्टा । जिस कर्म के उदय से जीव को आम्ल रस की प्राप्ति होती है, वह **आम्ल रस नाम कर्म** है । जैसे - इमली, नींबू

५) मधुर रस नाम कर्म - मधुर याने मीठा । जिस कर्म के उदय से जीव को मधुर रस की प्राप्ति होती है वह **मधुर रस नाम कर्म** है । जैसे - गन्ना

जिस कर्म उदय से प्राणीयों (जीवों) के शरीर में विविध प्रकार के स्पर्श की प्राप्ति होती है, वह स्पर्श नाम कर्म है । उसके आठ प्रकार है -

१) गुरु स्पर्श नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव को भारी शरीर की प्राप्ति होती है, उसे **गुरु स्पर्श नाम कर्म** कहते हैं । जैसे - लोहा, वज्र

२) लघु स्पर्श नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव को हल्के शरीर की प्राप्ति होती है, वह **लघु स्पर्श नाम कर्म** है । जैसे - रुई

३) मृदु स्पर्श नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कोमल / मृदु होता है, वह **मृदु स्पर्श नाम कर्म** है । जैसे - पुष्प, कपास

४) कर्कश नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कर्कश होता है वह **कर्कश स्पर्श नाम कर्म** है । जैसे - पत्थर ।

५) शीत स्पर्श नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव को ठंडे शरीर की प्राप्ति होती है, वह **शीत स्पर्श नाम कर्म** है । जैसे - बर्फ

६) उष्ण स्पर्श नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर उष्ण होता है, वह **उष्ण स्पर्श नाम** है । जैसे - अग्नि

७) स्निग्ध स्पर्श नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर मक्खन की भांति स्निग्ध होता है, वह **स्निग्ध स्पर्श नाम कर्म** है ।

८) रुक्ष स्पर्श नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर भस्म / राख की भांति रुक्ष होता है, वह **रुक्ष स्पर्स नाम कर्म** है ।

इस तरह वर्ण चतुष्क (वर्ण, गंध, रस, स्पर्श) के कुल भेद - (५+२+५+८=२०) बीस होते है ।

वर्ण चतुष्क में शुभाशुभ

नील कसिणं दुगंधं, तित्तं कडुअं गुरुं खरं रुक्खं ।
सीअं च असुह न वगं, इक्कारसगं सुभं सेसं ।।४२।।

गाथार्थ - वर्ण-गंध-रस-स्पर्श नाम कर्म की बीस प्रकृतियों में से नौ प्रकृतियाँ अशुभ है १) नील वर्ण २) कृष्ण वर्ण ३) दुर्गंध ४) तिक्त रस ५) कटुक रस ६) गुरु स्पर्श ७) कर्कश स्पर्श ८) रुक्ष स्पर्श ९) शीत स्पर्श

शेष ग्यारह प्रकृतियाँ शुभ कही गई हैं ।।४२।।

प्रस्तुत गाथा में वर्ण, रस, गंध, स्पर्श नाम कर्म की कुल बीस प्रकृतियों को शुभ-अशुभ प्रकृतियों में विभक्त किया गया है ।

नाम कर्म	अशुभ प्रकृतियाँ	शुभ प्रकृतियाँ	अशुभ	शुभ
वर्ण नाम कर्म	कृष्ण और नीला	रक्त,पीत और श्वेत	२	३
गंध नाम कर्म	दुर्गंध	सुगंध	१	१
रस नाम कर्म	तिक्त और कटु	कषाय, अम्ल, मधुर	२	३
स्पर्श नाम कर्म	गुरु, कर्कश, रुक्ष, शीत	लघु,मृदु,स्निग्ध, उष्ण	४	४
			९	११

आनुपुर्वी और विहायोगति नाम कर्म

चउह - गइव्वणुपुव्वी, गइ पुव्वी दुगं तिगं नियाउ जुअं ।
पुव्वी उदओ वक्के, सुह असुह वसुट्ट विहगगई ।।४३।।

गाथार्थ - गति नाम कर्म की भांति आनुपूर्वी नाम कर्म भी चार प्रकार का है । गति और आनुपूर्वी व्दिक कहलाती है । उसमें स्वयं का आयुष्य जोडने पर त्रिक कहा जाता है । आनुपूर्वी का उदय वक्र गति में होता है ।

दो प्रकार की विहायोगति कही गयी है - शुभ विहायोगति एवं अशुभ विहायोगति । शुभ विहायोगति वृषभ की चाल की भांति और अशुभ विहायोगति ऊँट की चाल की भांति कही गयी है ।।४३।।

आनुपूर्वी नाम कर्म - जीव को एक स्थान से दूसरे स्थान में उत्पन्न होने में जो कर्म सहायक बनता है वह आनुपूर्वी नाभ कर्म कहलाता है । आनुपूर्वी याने एक के पश्चात एक अनुक्रम में रही आकाश प्रदेशों की श्रेणियाँ ।

मृत्यु के पश्चात दूसरे स्थान पर जन्म लेने के लिये आत्मा को आकाश प्रदेश की श्रेणियों पर चलना पडता है । इस तरह चलते जहाँ पर भी मोड (वक्र-मोड) मुडना रहता है, उस स्थान से दूसरी श्रेणी पर चढने में यह कर्म सहायक बनता है । इसमें अधिकतम जीव तीन मोड लेता है, तथा ४ से ५ समय में स्वयं के उत्पति स्थान पर पहुँच जाता है, नरकादि चार गतियों की भांति आनुपूर्वी भी चार प्रकार की कही गई है -

१) नरकानुपूर्वी नाम कर्म - नरक गति की तरफ जाते मोड मुडने के स्थान पर मदद करके आत्मा को नरकगति में ले जाने वाला कर्म ।

२) तिर्यंचानुपूर्वी नाम कर्म - तिर्यंचगति की तरफ जाते मोड मुडने के स्थान पर मदद करके आत्मा को तिर्यंचगति में ले जाने वाला कर्म ।

३) मनुष्यानुपूर्वी कर्म - मनुष्य गति की तरफ जाते मोड मुडने के स्थान पर मदद करके आत्मा को मनुष्य गति में ले जाने वाला कर्म ।

४) देवानुपूर्वी नाम कर्म - देवगति की तरफ जाते मोड मुडने के स्थान पर मदद करके आत्मा को देव गति में ले जाने वाला कर्म ।

जो गति हो वही आनुपूर्वी होती है और वही आयुष्य होता है । इससे जहाँ गति व्दिक हो तब गति और आनुपूर्वी लेना है तथा गति त्रिक हो वहा गति आनुपूर्वी और आयुष्य लेना हैं ।

जैसे - नरक द्विक - नरक गति तथा नरकानुपूर्वी

नरक त्रिक - नरक गति, नरकानुपूर्वी तथा नरकायुष्य

इसी तरह अन्य गतिओं में भी जानना ।

विहायोगति नाम कर्म

विहाय-विहार, चाल, गमन । जीव के चलने के ढंग को विहायोगति नाम कर्म कहते हैं । इसका उदय त्रस जीवों को ही होता है । त्रस जीवों को चलने की शक्ति तो मिलती है परंतु सभी की चाल में फर्क होता है । ऊँट और बैल की चाल अलग, हंस और कौवे की चाल, कुत्ते और बंदर की चाल अलग । इन सभी चाल को शुभ और अशुभ दो विभागों मे विभाजित किया गया है वह विहायोगति है ।

दूसरों को प्रिय लगे ऐसी चलने की सुलक्षणी रीत प्रदान करने वाला कर्म वह शुभ विहायोगति नाम कर्म है । जैसे - गज, वृषभ, हंस जैसी सुंदर चाल ।

दूसरों को अप्रिय लगे ऐसी चलने की कुलक्षणी रीत प्रदान करने वाला कर्म वह अशुभ विहायोगति नाम कर्म है । जैसे - ऊँट, गधे, तीड जैसी चाल ।

पराघात - उच्छवास नाम कर्म

परघाउदया पाणी, परेसिं बलिणंपि होइ दुद्धरिसो ।
ऊससण लद्धिजुत्तो, हवेइ ऊसासनाम वसा ।।४४।।

गाथार्थ : पराघात नाम कर्म के उदय से जीव बलवान को भी भारी पड जाता है, अर्थात निर्बल को भी अन्य बलवान मुश्किल से जीत पाते हैं ।

उच्छवास नाम कर्म के उदय से जीव उच्छवास (श्वासोश्वास) लब्धि से संपन्न होता है ।

जिस कर्म के उदस से जीव इतना प्रभावशाली और तेजस्वी बनता है की उसके दर्शन मात्र से, वाणी मात्र से सामने बलवान व्यक्ति भी क्षोभ पा जाते है, होंठ बंद हो जाते है, कुछ बोल नहीं पाते, विरोधी भी दब जाते हैं, परंतु स्वयं किसी से भी क्षोभ नहीं पाते वह **पराघात नाम कर्म** है ।

जिस कर्म के उदय से जीव आसानी से नाक अथवा शेष अंग से श्वास ले सकता है, छोड सकता है, श्वास लेने छोडने में कहीं कोई कठिनाई नहीं होती वह उच्छवास या **श्वासोश्वास नाम कर्म** है ।

विरति वाटिका

अनर्थ दंड

अनंत उपकारी...तरणतारण तीर्थंकर परमात्मा ने इस जीव के उपर कैसी करुणा बरसायी है ? इस जीव को अपने अंधकारमय भविष्य का विचार नहीं है, उसके पाप भरे हुए वर्तमान का पश्चाताप नहीं है, परंतु देवाधिदेव को उसकी चिंता है, इसीलिये तो जीव को पापो से बचाने हेतु विरतिधर्म की स्थापना की है, हमे विरति का मार्ग बताया है ।

साधु के लिये सर्वविरति बतायी ।

श्रावक के लिये देशविरति बतायी ।

देश-विरतिधर श्रावक के बारह व्रतो में आठवां व्रत है अनर्थदंड विरणव्रत ।

अनादिकाल से संसार सागर में परिभ्रमण करता यह जीव सदा-सर्वदा-सर्वत्र, स्व के लिये, पर के लिये, अपने कर्तव्य के लिये या कर्तव्य के बिना पापकर्म बांधता रहता है और इस वजह से आत्मा दंडित हो दुर्गति में दुःख, दर्द एवं दुर्भाग्य को पाती रहती है, ऐसे जीवो को बचाने-उबारने हेतु प्रभु ने सुंदर मार्ग बताया है । प्रभु ने आत्मा जो दंड भोगती है, उसके दो प्रकार बताये हैं :-

१) अर्थ दंड एवं २) अनर्थ दंड

शरीर, कुटुंब आदि की वजह से फर्ज निभाने जो कार्य करने में आते है, या स्वलाभ के प्रयोजन वाली प्रवृत्ति, उससे बंधाते कर्म एवं उससे भोगने पडते फल वो अर्थदंड है । परंतु जीव अनेक बार जिसके साथ खुद का कुछ लेना-देना नहीं है,ऐसी प्रयोजन बिना की प्रवृति करता है, उससे बंधाते कर्म एवं उसके द्वारा भोगने पडते कटु विपाक फल वो अनर्थदंड है ।

अर्थदंड के बिना जीवन नहीं जिया सकता इसलीये उसे त्यागा नहीं जा सकता परंतु अनर्थदंड के बिना जीवन जिया जा सकता है, पाप से बचा जा सकता है इसलीये प्रभुजी ने अनर्थदंड का त्याग करने की बात बतायी है ।

जो जीव अनर्थदंड से विराम पाकर आत्मा को संभावित पापकर्म से मुक्त रखता है, वो सचमुच धन्य है, आओ ! हम अनर्थदंड विरमणव्रत को एवं उसके अतिचारो को जानकर जीवन को इस व्रत के द्वारा शृंगारित करने के लिये प्रयासरत बनते है ।

आठवां अनर्थदंड विरमणव्रत नामक तीसरा गुणव्रत है, हमारा या हमारे स्वजन का जो कार्य उसे अर्थदंड कहते है पर जिसमें स्वयं को तथा अपने स्वजन को कुछ लाभ नहीं ऐसे निष्फल कर्म को अनर्थदंड कहते है, यानि प्रयोजन बिना जो पुण्यव्रत धन का नाश करके आत्मा को दंडित करना, पापकर्मो से लीपना अर्थात बेवजह दंडित करना उसे अनर्थदंड कहते है, जो अपध्यान आदि भेद से चार प्रकार का है, उसे मुहूर्त आदि काल की मर्यादा से निषेध करना उसे अनर्थदंड विरमणव्रत कहा जाता है, अनर्थदंड चार प्रकार से है -

१) अपध्यानाचरित अनर्थदंड - अप यानि बुरा (खराब) ऐसा जो आर्तध्यान एवं रौद्रध्यान है इस ध्यान का आचरण किया हो अर्थात अंतःमुहर्त तक अथवा ज्यादा क्रोध धारण किया हो तथा किसी के साथ बैर करने का ध्यान, कलह करने का ध्यान, वाद-विवाद करने का ध्यान, लडाई झगडा करने का ध्यान, अबोले रहकर रोष करना श्राप देना, गाली देना तथा कर्कश यानि खराब, अप्रिय कडक वचन बोलना, व्याकुल चित्त से चिंता करना वह अपध्यानाचरित अनर्थदंड कहलाता है ।

२) प्रमादाचरित :- पानी में तैरना, छिडकाव को छिडकना, जुगार खेलना, वाद करना, विकथा वो स्त्रीकथा, देशकथा, राजकथा एवं भोजन कथा ये चार विकथाये करना तथा पुण्यप्रभावना जिससे होती है जिसके अंग जो जिनपूजा, प्रतिक्रमण आदि अनुष्ठान शास्त्रश्रवण आदि है उन्हैं टालकर जिसकी वजह से हास्य रस उत्पन्न हो ऐसे नये-नये नाटक कराना, देखना, गीत गवाना अथवा हास्य विनोद करना एवं रसवृति को बढाने वाले ऐसे मिष्टान आदि रस का बखान करना, होली के फागगीत गवाना, खेलना भूत-प्रेत निकालने वालों को नचाना, नवरात्रि में गरबे करना, करवाना, खेल करवाना, वाडी, बाग, बगीचो में घूमना, नये नये दैत्य आदि के वेश करवाना, मल्लयुद्ध करवाना, पाडे (भैंसा), कुत्ते, मुर्गो को आपस मे लडवाना और शरीर में रोग तथा मेहनत करने का श्रम (थकान) कुछ भी नहीं हो तो भी प्रमादवश निरर्थक धर्मध्यान आदि शुभकृत्य न करते हुए संपूर्ण रात्रि भर सोये रहकर निद्रा लेनी तथा हरे या ताजे यानि निरर्थक रुप से फूल-फलं पत्ते उन्हैं वृक्षों में से तोडना एवं देरासर, पौषधशाला में तांबुल आदि दस आशातनाये करना वो सब प्रमाद के वश से आचारित होती है, इसलीये वे प्रमादाचरित कहलाती है ।

३) हिंसा प्रदान :- किसी को खोदने के औजार, कुल्हाडी, फावडा, धनुष, तलवार एवं आरा इत्यादि पदार्थ सारे जीवहिंसा के अंग है, वो दे वह हिंसा प्रदान कहलाता है ।

४) पापोपदेश :- कारण बिना किसी को पाप का उपदेश करे की भाई यह घोडा एवं वृषभ (बैल) आदि बडे हो गये इसलीये अब इनको जोतो, तैयार करो तो काम में आवे तथा यह खेत निरर्थक पडा है इसमें हल चलवाकर पानी की नाली जोड दो तो धान्य अच्छा उपजेगा अथवा यह तुम्हारी बैलगाडी पडी है उसे जोतो तथा कब का दिन तो उग गया है, अभी तक क्यों घर में सोये हो उठो, दुकान खोलो तो बिक्री हो एवं अन्य किसी को भी कहना की यह फलां तुम्हारा बैरी है, उसका नाश करो, घात करो इस तरह का जो बिना कारण बोलना वो सब पापोपदेश अनर्थदंड कहलाता है ।

इस चार प्रकार के अनर्थदंड का परिहरण यानि त्याग करना इसे अनर्थदंड विरमणव्रत कहा जाता है । इस व्रत के बारे में अनाभोग आदि से जो अतिचार दोष लगे हो उनका पडिक्कमण करना ।

१) कंदर्प अतिचार :- कंदर्प यानिकामविकार को उत्तेजित करने हेतु विकार सहित वचन बोले हो तो प्रथम कंदर्प नामक अतिचार जानना ।

२) कौकुच्य :- भांड भवाईयो की चेष्टा करना, मुख एवं नयन के इशारो द्वारा लोगों को हँसाना, यह दूसरा कुचेष्टा अतिचार जानना ।

३) मौखर्य :- मुख में से अतिशय वाचाल रुप से असमंजस वचन बोलना, जैसे की परायी पंचायत करना यानि की दूसरो की अच्छी, बुरी बात हो उसे खींचते रहना, छोडना ही नहीं, बडी आवाज में किसी का झूठा

मर्म उजागर करना, यह तीसरा मौखर्य नामक अतिचार जानना ।

४) संयुक्ताधिकरण :- अधिकरण यानि उखल मूसल जिसमें बाजरी मसाले आदि डालकर मूसल से कूटते है वो जानना एवं अनाज पीसने की चक्की, गन्ने का रस निकालने के उपकरण, तिल वगैरह पीलने की घाणी, निसाद यानि दाल आदि बनाने के पत्थर, लोहे के औजार, धनुष्य बाण जोत्र-पराणो इत्यादि अनेक प्रकार के हिंसाकारी अधिकरण है, उन्हें एकत्र रखे हो एवं ऐसे तैयार रखे हो की उन्हें देखते ही कोई उनका उपयोग करने के लिये मांगे तो उनका उसी समय उपयोग कर सके, इसलीये ऐसी वस्तुये रखना ही नहीं, यदि रखे हो तो उनमें कोई त्रुटि (कमी) रखना ही । इसके बावजूद वो वस्तुये तैयार रखी हो, किसी को काम पडने पर तुरंत उसे देने में आये इस हेतु से उदारता दर्शाने के लिये दूसरो को देना, दिलवाना यह चौथा संयुक्ताधिकरण नामक अतिचार जानना ।

५) उपभोग-परिभोगातिरेक अतिचार :- अपने उपभोग तथा परिभोग में उपयोग योग्य जो वस्तुयें चाहिये उससे ज्यादा अतिरेक यानि बढावा करना, जैसे की स्नान के लिये जितना पानी,तेल वगैरह चाहिये उससे ज्यादा द्विगुना, चौगुना करके रखना । विचित्र प्रकार के भोजन के बारे में, वस्त्राभूषण आदि पहनने के बारे में, वस्त्रादि ओढने के बारे में अत्यंत आसक्ति की हो, रात्रि में बाल गूंथे, गूंथवाये हो तथा बासीगारे (गोबर से) लिपने का कार्य किया, करवाया हो, झूठे कर्कश वचन बोले हो उसी तरह असत्य वचन बोले गये हो । इन पांचो अतिचार को टालने का प्रयत्न करना चाहिये ।

आठवाँ अनर्थदंड विरमणव्रत का स्वीकार करने हमें निम्न अनुसार प्रतिज्ञा करने की होती है -

शरीर कुटुंब आदि के लिये कर्तव्यपालन हेतु जो प्रवृति करने में आये वो अर्थदंड इसके अतिरिक्त की जिन प्रवृतियो से आत्मा दंडित हो एवं कर्मबंधन हो वो अनर्थदंड । इस अनर्थदंड का दुर्ध्यान, पापोपदेश, हिंस्त्रप्रदान तथा प्रमादाचरण, इन चार प्रकार से मैं त्याग करता हुं ।

लिये हुए पच्चक्खाण के सुंदर पालन हेतु निम्न नियम हमें सहायता करते है -

१) मैं आत्महत्या करुंगा नहीं और ऐसा विचार आने पर सद्गुरु का सत्संग करुंगा ।

२) मैं किसी की जान लेने, हत्या का विचार नहीं करुंगा, ऐसा विचार आने पर सत्संग करुंगा ।

३) मैं स्त्री या पुरुष संबंधित वासना, विकारमय विचार नहीं करुंगा, ऐसा विचार आते ही अशुचि भावना के स्मरण के साथ मन में १०८ बार मिच्छामि दुक्कडं मांगूगा ।

४) हिंसक धंधे की कभी किसी को सलाह नहीं दूंगा ।

५) मैं तलाक नहीं लूंगा, किसी को ऐसी सलाह नहीं दूंगा ।

६) मैं प्रेमविवाह नहीं करुंगा , दूसरों को सलाह नहीं दूंगा ।

७) मैं प्रभुआज्ञा के विरुद्ध रात्रिभोजन करना चाहिये, कंदमूल खाना चाहिये ऐसा उपदेश नहीं दूंगा ।

८) मैं पाप करने के लिये किसी को प्रेरित नहीं करुंगा ।

९) मैं लॉटरी के टिकिट लूंगा नहीं, बेचुंगा नहीं ।

१०) मैं पैसो से शर्त लगाऊंगा नहीं, सट्टा खेलूंगा नहीं ।

११) मैं ताश (पत्ते) से, पैसे से जुँआ खेलूंगा नहीं ।

१२) मैं पशु-पक्षियों को लडाने की, मारने की, शूट करने आदि की हिंसक व्ही.डी.ओ. गेम खेलूंगा नहीं ।
१३) मैं मटका, आँकडे लगाऊंगा नहीं ।
१४) मैं नवरात्रि में गरबे, डान्स, दांडियारास, नहीं खेलूंगा , नहीं देखूंगा ।
१५) मैं होली, धुलेटी वगैरह त्यौहारों में रंग से नहीं खेलूंगा ।
१६) मैं फटाखे नहीं फोडूंगा, नहीं बेचुंगा ।
१७) मैं पतंग नहीं उडाऊंगा, लूटूंगा भी नहीं और बेचूंगा भी नहीं ।
१८) मैं क्रिकेट वगैरह खेलो पर सट्टा नहीं लगाऊंगा ।
१९) मैं घर में हीरो, हीरोइनो के कैलेण्डर लाऊंगा नहीं, लगाऊंगा नहीं ।
२०) मैं घर में टी.व्ही. ,केबल, डिश आदि को स्थान दुंगा नहीं ।
२१) मैं टी.व्ही. सिनेमा देखूंगा नहीं ।
२२) मैं वर्ष में.....से ज्यादा सिनेमा देखूंगा नहीं ।
२३) मैं फिल्मो के सेक्सी गीत गाऊंगा नहीं, सुनुंगा नहीं ।
२४) मैं पाप करके उसकी प्रशंसा नहीं करुंगा ।
२५) मैं पुण्य करके उसका पश्चाताप नहीं करुंगा ।
२६) मैं किसी की निंदा नहीं करुंगा, हो जायगी तो भगवान को १२ खमासमणे दूंगा ।
२७) मैं क्रोध नहीं करुंगा, क्रोध हो जायगा तो..... रुपये शुभ खाते में वापरुंगा ।
२८) मैं मुर्गो की लडाई, मल्लयुद्ध एवं कुस्ती वगैरह नहीं देखूंगा ।
२९) मैं घोडे की रेस देखूंगा नहीं, खेलूंगा नहीं ।
३०) मैं विवाह, मृत्यु एवं गोदभराई आदि के भोजन समारोह में भाग नहीं लूंगा ।
३१) मैं पर्वतीथि, शाश्वती ओळी, पर्यूषण पर्व आदि में अनाज पीसवाऊंगा नहीं, कूटुंगा नहीं, दूसरो के पास से ऐसी प्रवृतियाँ करवाऊंगा नहीं ।
३२) मैं जहां तक हो सके कर्कश, क्लेशयुक्त वचन नहीं बोलुंगा ।
३३) मैं किसी को श्राप नहीं दूंगा ।